अध्याय बारह

पाश्चात्य रीति से सीखना

यदि आप जानते भी हों, तो भी किसी से पूछना बेहतर है।

लद्दाखी कहावत

वास्तविक शिक्षा के मूल्य से कोई भी इनकार नहीं कर सकता, जो है ज्ञान को विस्तारित और समृद्ध करना। परंतु आज शिक्षा कुछ और ही हो गई है। वह बच्चों को उनकी संस्कृति और प्रकृति से अलग कर देती है बल्कि उन्हें पश्चिमीकृत नगरीय पर्यावरण में संकीर्ण विशेषज्ञ बनने का प्रशिक्षण देती है। यह प्रक्रिया लद्दाख में विशेष रूप से स्पष्ट है, जहाँ आधुनिक स्कूली शिक्षा आँखों पर पट्टी बाँध देती है, बच्चों को उस संदर्भ को देखने से रोकती है जिसमें वे रहते हैं। जब वे स्कूल छोड़ते हैं तो अपने ही संसाधनों का उपयोग नहीं कर पाते, अपने ही संसार में कोई कार्य नहीं कर पाते।

मठों में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा को छोड़ कर पारंपरिक संस्कृति में ''शिक्षा'' नाम की कोई पृथक प्रक्रिया नहीं थी। शिक्षा, समुदाय तथा उसके पर्यावरण से घनिष्ट संबंध का उत्पाद थी। बच्चे दादा, नाना, परिवार और मित्रों से सीखते थे। उदाहरण के लिए, बुआई में मदद करते हुए वे सीख लेते थे कि गाँव के एक तरफ का हिस्सा थोड़ा गर्म है और दूसरी तरफ थोड़ा ठंडा। अपने निजी अनुभवों से बच्चे जौ की विभिन्न किस्मों के अंतर और प्रत्येक किस्म को कैसी खास उपजने की स्थिति की ज़रूरत होती है, को समझ लेते थे। वे सूक्ष्मतम जंगली पौधे को पहचानना और उसका उपयोग करना सीख जाते थे, तथा सुदूर पर्वतीय ढलान में अपने पशु को ढूँढ़ लेते थे। वे अपने आसपास के प्राकृतिक संसार के जटिल संजाल के विषय में, उनके ऊपर-नीचे होते संबंधों, युतियों, प्रक्रियाओं और बदलावों को सीखते थे।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी, लद्दाखी स्वयं को वस्त्र और घर उपलब्ध कराने की कला सीखते हुए बड़े होते थे; कैसे याक के चर्म से जूते बनाना और कैसे भेड़ की ऊन से लबादे बनाना; कैसे मिट्टी

और पत्थर से घर बनाना; शिक्षा स्थान-केंद्रित थी और जिस जगत में वे रहते हैं उससे अंतरंग संबंधों को पुष्ट करने वाली थी, जो उन्हें, जैसे-जैसे वे बड़े होते थे, उसके उपयोग से संसाधनों का प्रभावी एवं अधिकाधिक उपयोग करना सिखाती थी।

ऐसी कोई शिक्षा आधुनिक स्कूल में नहीं दी जाती। बच्चों को अभियांत्रिकी समाज में विशेषज्ञ बनने की शिक्षा दी जाती है, बजाय कि एक पर्यावरणीय समाज में। स्कूल वह स्थान है जहाँ पारंपरिक कौशल को भुला ही नहीं दिया जाता है बल्कि उसकी ओर हीन दृष्टि से देखा जाता है।

पाश्चात्य शिक्षा, लद्दाख के गाँवों में सर्वप्रथम सत्तर के दशक में आई। आज यहाँ लगभग दो सौ स्कूल हैं। इसका मूल पाठ्यक्रम भारत के विभिन्न भागों में जो पढ़ाया जाता है, उसकी भोंडी नकल है; जो खुद ब्रिटिश शिक्षा की नकल है। उसमें लद्दाखी तो कुछ है ही नहीं। एक दफ़ा लेह के स्कूल की कक्षा में, मैंने एक पाठ्यपुस्तक में चित्र देखा जो लंदन या न्यूयार्क के बच्चे के शयनकक्ष का होगा। इसमें बड़ी सफाई से घड़ी किये गए रूमालों की थप्पी थी और निर्देश थे कि वेनिटी यूनिट के किस दराज में उन्हें रखना चाहिये। ऐसे ही मूर्खतापूर्ण उदाहरण सोनम की छोटी बहन की पाठ्यपुस्तक में थे। एक बार होमवर्क (गृहकार्य) में उसे बताना था कि पीसा की झुकती मीनार कितने अंश का ज़मीन से कोण बनाती है। एक बार वह *'इलियड'* के अंग्रेजी अनुवाद से उलझ रही थी।

अधिकांश हुनर जो लद्दाखी बच्चे स्कूल में सीखते हैं, वे उनके किसी काम में नहीं आएँगे। वे उस शिक्षा का निकृष्ट संस्करण सीखते हैं जो न्यूयार्क के लिये उचित हो सकती है। वे उन पुस्तकों से पढ़ते हैं, जो उनके द्वारा लिखी गई हैं, जिन्होंने कभी लद्दाख में पैर नहीं रखा। जो 12,000 फीट की ऊँचाई पर जौ कैसे उगाई जा सकती है, या धूप में सुखाई ईंटों से घर कैसे बनाए जा सकते हैं, इस बाबत कुछ नहीं जानते।

आज विश्व के हर कोने में, ''शिक्षा'' नामक प्रक्रिया उसी अवधारणा पर और उसी यूरोप केंद्रित नमूने पर आधारित है। ध्यान दूर के तथ्यों और आँकड़ों पर क्रेंद्रित किया जाता है – वैश्विक ज्ञान। किताबें ऐसी सूचनाएँ देती हैं जो पूरे ग्रह के लिये उचित हों। परंतु चूंकि एक ही तरह का ज्ञान जो विशिष्ट पर्यावरणीय पद्धतियों तथा संस्कृतियों से बहुत दूर है, पूरे विश्व पर लागू किया जा रहा है और बच्चे जो सीखते हैं, वह मूलत: नकली और जीवंत संदर्भ से एकदम अलग होता है। यदि वे उच्च शिक्षा की ओर जाते हैं तो वे भवन निर्माण के विषय में सीख सकते हैं, पर वे मकान कांक्रीट व इस्पात के होंगे, वैश्विक डिब्बे। इसी तरह यदि वे कृषि का अध्ययन करते हैं, तो औद्योगिक खेती करना सीखेंगे: रासायनिक खाद और कीटनाशक, बड़ी मशीनें और संकर बीज। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली हमें और गरीब बनाती जा रही है, क्योंकि वह

दुनिया भर में लोगों को एक जैसे संसाधनों का प्रयोग करना सिखाती है, जिसमें उनके अपने पर्यावरण की अवहेलना होती है। इसी प्रकार शिक्षा कृत्रिम कमी सृजित कर रही है और प्रतियोगिता को बढ़ावा दे रही है।

इस प्रक्रिया में सबसे स्पष्ट उदाहरण है जिस तरह से याक और उसके स्थानीय संकरों को हटाकर उनके स्थान पर जर्सी गायों को लाने में दृष्टिगोचर होता है। पारंपरिक अर्थव्यवस्था में याक महत्त्वपूर्ण है। यह ऐसा जानवर है, जो स्थानीय पर्यावरण के सर्वथा अनुकूल है और 16,000 फीट या उससे अधिक की ऊँचाई पर हिमनदों के पास रहना पसंद करता है। यह लंबी दूरियाँ तय करता है और चरने हेतु सीधी-खड़ी ढलान पर चढ़-उतर सकता है और उस अल्प वनस्पति पर गुज़ारा कर सकता है जो इस कठिन भूमि में उगती है। इसके लंबे बाल इसकी ठंड से रक्षा करते है और अपनी विशाल काया के बावजूद यह ऊबड़-खाबड़ चट्टानों में संतुलन बनाए रख सकता है। याक – ईंधन, गोश्त, श्रम और बाल का प्रदाय करता है जिससे कंबल बुने जाते हैं। मादा याक भी सीमित मात्रा में पर बहुत पौष्टिक दूध, औसतन तीन लीटर प्रतिदिन देती है।

आजकल के मानदंडों के अनुसार याक ''अकुशल'' है। कृषि विशारद जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण की है, इसकी और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। '' *'ड्रिमो'* (मादा याक) मात्र तीन लीटर दूध एक दिन में देती है,'' उनका कहना है, ''हमें जिसकी आवश्यकता है वह जर्सी गायें हैं – वे प्रतिदिन तीस लीटर दूध देती हैं। विशेषज्ञों का प्रशिक्षण उसकी अनुशंसा करते समय, उन्हें विस्तृत सांस्कृतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय नतीज़ों की ओर नहीं देखने देता। याक चरते समय दूर-दूर तक चलकर ऊर्जा का संचय करता है – ऊर्जा, जो ईंधन के अतिरिक्त, अंतत: लोगों द्वारा भोजन, वस्त्र एवं श्रम के रूप में प्रयुक्त होती है। उसकी तुलना में जर्सी गाय, 16,000 फीट तक चल भी नहीं सकती, उस ऊँचाई में जिंदा रहना तो दूर की बात है। वह 10,000 या 11,000 फीट तक रह सकती है, जहाँ लोग रहते हैं और उसे विशेष आवास की जरूरत होती है। उसे विशेष रूप से तैयार किया गया चारा, उसके आवास में जाकर देना पड़ता है।

आधुनिक शिक्षा न केवल स्थानीय संसाधनों की उपेक्षा करती है, बल्कि उससे भी बुरा यह है कि वह लद्दाखी बच्चों के दिमाग में ऐसी सोच भर देती है कि वे स्वयं को व अपनी संस्कृति को हीन समझें। उनसे उनका स्वाभिमान छीना जा रहा है। स्कूल की हर बात पश्चिमी मॉडल को आगे बढ़ाती है, जिसका सीधा प्रभाव यह होता है कि वे अपनी खूद की परंपराओं पर लज्जित होते हैं।

1986 में स्कूली बच्चों से वर्ष 2000 में लद्दाख कैसा होगा, इसकी कल्पना करने को कहा गया। एक छोटी लड़की ने लिखा, ''1974 के पहले, लद्दाख के बारे में दुनिया कुछ नहीं जानती थी, लोग असभ्य थे, हर चेहरे पर मुस्कान थीं। उन्हें पैसों की आवश्यकता नहीं थी।

अपने पर्यावरण के लिये आदर्श, याक ऊँचे चरागाहों में चरते हैं।

जो कुछ भी उनके पास था, वह उनके लिये पर्याप्त था।'' एक अन्य निबंध में एक बच्चे ने लिखा, ''वे अपने गाने इस तरह गाते हैं, जैसे बड़े शर्म की बात हो, पर वे अंग्रेजी और हिंदी गाने बड़ी रुचि से गाते हैं। ... परंतु इन दिनों हम देखते हैं कि अधिकांश लोग, लद्दाखी वस्त्र नहीं पहनते, जैसे शर्म आती हो।''

शिक्षा लोगों को कृषि से खींच कर शहर में ले आती है, जहाँ वे पैसों के अर्थतन्त्र पर आश्रित हो जाते है। पारंपरिक लद्दाख में, बेरोजगारी जैसी कोई चीज़ नहीं थी। किंतु आधुनिक काल में अब अत्यंत सीमित संख्या में, विशेषत: सरकार में नौकरियाँ उपलब्ध होने के कारण जबर्दस्त प्रतिस्पर्धा है। इसके फलस्वरूप बेरोजगारी गंभीर समस्या बन चुकी है।

आधुनिक शिक्षा के प्रत्यक्ष लाभ भी हुए हैं, जैसे साक्षरता व गणना कर सकने की दर में सुधार। इसके कारण लद्दाखी, बाहरी दुनिया में कौन सी शक्तियाँ काम कर रही है, इसके विषय में जानकारी प्राप्त कर सका है। परंतु ऐसा करने में, लद्दाखी एक दूसरे से तथा ज़मीन से बंट गए हैं और विश्व की आर्थिक सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर आ गए हैं।